Nav Jyoti, Vol. 6, No. 12, January-June 2018 ISSN : 2249-7331

जनजातीय विकास में संलग्न स्वयंसेवी संस्थाएँ

डॉ0 उमेश कुमार गुप्ता

पीएच०डी०, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

हमारे मस्तिष्क में ज्योंहि जनजाति शब्द आता है, त्योहिं एक ऐसे मानवजातीय समूह का चित्र हमारे मस्तिष्क में उभरता है, जो जंगली, पहाड़ी, पठारी, समुद्रतटीय, मरूस्थल एवं द्वीप समूहों में निवास करता है तथा जिनका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक संगठन बिल्कुल सरल होता है। ये जनजाति दुर्गम स्थानों में रहती है, तथा इनकी अर्थव्यवस्था अस्तित्व–अभिमुख होती है। यह समूह अपने अस्तित्व के लिए निरंतर प्रकृति के साथ कठिन संघर्ष करता नजर आता है। जनजातीय समूह भारतीय समाज के सबसे निचले पायदान पर गिने जाते हैं। पीढ़ियों से ये लोग अन्य लोगों द्वारा उपेक्षित होते आए हैं। आजादी के बाद यद्यपि केन्द्र और राज्य सरकारों का ध्यान इन जनजातियों पर पड़ा है परंतु आजादी के पूर्व से ही इन जनजातीय समुदायों की कारूणिक स्थितियों के कारण अनेक संस्थाओं ने अपनी अमूल्य सेवा इन्हें प्रदान की है। ये उन स्वतंत्र स्वायत्त तथा अलाभकारी संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो देश की सामाजिक तथा विकासात्मक समस्याओं पर कार्य करती है। इनमें समर्पण और निःस्वार्थ सेवा भाव भी होती है जिसका लाभ कमाने वाली व्यापारी वर्गों में सर्वथा अभाव होता है।

स्वयंसेवी संस्थाएँ सरकार तथा व्यापारी वर्ग से परे एक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। ये उन स्वतंत्र, स्वायत्त तथा अलाभकारी संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो देश की सामाजिक तथा विकासात्मक समस्याओं पर कार्य करने में जुटी है। प्रस्तुत आलेख के माध्यम से इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार ये स्वयंसेवी संस्थाएँ अपनी ऊर्जा का उपयोग जनजातियों के शैक्षणिक विकास एवं आर्थिक प्रगति के लिए करती है।

स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका :

स्वयंसेवी संस्थाएँ स्वैच्छिक गतिविधियों को सम्पादित करती है। स्वैच्छिक गतिविधियों से अभिप्राय उन क्रियाओं से है जो किसी व्यक्तिगत समूह को सरकार के दिशा–निर्देशों से मुक्त समाज में किसी कार्य को करने का अवसर प्रदान करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ''वह व्यक्तिगत क्रिया जो सरकार की अधिकारिक शक्तियों के दिशा–निर्देशों से मुक्त हो, स्वैच्छिक क्रिया कहलाती है।''[1] स्वैच्छिक गतिविधियाँ समाज के व्यक्तियों या समूहों की सभी प्रकार की वैध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोई कार्य विकसित करने में किया गया समर्थन, सशक्तिकरण तथा सहयोग की संगठित गतिविधियों का एक रूप है। स्वयंसेवी संस्थाओं में सरकारी संस्थाओं की तुलना में, कम–से–कम गरीबों के विकास के लिए अधिक प्रभावी अभिकर्ता बनने की संभावना निम्न तीन कारणों से होती है–

- सरकारी संस्थाओं के अपेक्षा स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ता गरीबों की समस्याओं को दूर करने के लिए पूरी निष्ठा से कार्य करते हैं।
- सरकारी संस्थाओं के अपेक्षा ये गरीब ग्रामीणों से बेहतर संबंध स्थापित कर सकते हैं, तथा
- चूँकि स्वयंसेवी संस्थाएँ नौकरशाही के नियम–कानूनों से बंधे नहीं होते, अतः ये अधिक लचीलेपन से कार्य कर सकते हैं, साथ ही अपनी गतिविधियों का लगातार तथा तीव्रता से पूर्वानुभव द्वारा पुनर्नियोजन कर सकते हैं।

इस संदर्भ में एल.एम. प्रसाद[2] ने दो और बिन्दू जोड़े हैं वे हैं :–

- स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्य सरकारी विभागों के कार्यों की अपेक्षा कम खर्च में पूरे हो जाते हैं।
- स्वयंसेवी संस्थाएँ सरकारी विभागों की तुलना में अधिक लोगों को विकास के कार्यों में सहभागिता के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

स्वैच्छिक भारतीय समाज में परिवर्तन की मौलिक प्रवृति है। इसी भावना के कारण अंग्रेजी शासन में परिवर्तन हुआ और राजनीतिक आजादी मिली। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विकास तथा राष्ट्र–निर्माण के कार्यक्रम राष्ट्रीय और स्वैच्छिक दोनों ही स्तरों पर बने। लेकिन आजादी के पूर्व भी जनजातियों के कल्याण के लिए कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ कार्यरत थीं। ग्रामीण विकास तथा राष्ट्र–निर्माण के क्षेत्र में स्वयंसेवी संस्थाओं ने लगातार उल्लेखीय भूमिका निभाई। ग्रामीण जनजातीय विकास के अधिकांश प्रयासों की शुरूआत महान व्यक्तियों और संगठनों द्वारा हुई जिसमें ईसाई मिशनरियाँ तथा अन्य धार्मिक संस्थाएँ भी कार्यरत थीं। ये संगठन वर्तमान में भी विकास के क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभा रहे हैं। जब तक प्रशासन का एक विशुद्ध लोकतांत्रिक तंत्र नहीं जन्म लेता तब तक इन संस्थाओं की आवश्कयता बनी रहेगी।[3]

1871 ई. में गुजरात में भील सेवा मंडल का गठन हुआ था। तत्कालीन समय में जनजातीय विकास के लिए समर्पित स्वयंसेवी संगठनों के निर्माण के पीछे ए.वी. ढक्कर का प्रयास था। भारत की स्वतंत्रता के समय तक उन्होंने देश के विभिन्न भागों में 20 से अधिक स्वयंसेवी संस्थाओं की स्थापना की। कांग्रेस के कुछ अन्य नेता भी जनजातियों के कल्याण की गतिविधियों से जुड़े थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के भारतीय आदिम जाति सेवक संघ ने संविधान निर्माण के समय जनजातियों से संबंधित नीतियों के निर्धारण में बहुत मद्द की थी।[4]

वर्तमान समय में अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ शिक्षा, जनस्वास्थ्य तथा सांस्कृतिक गतिविधियों जैसे अनेक क्षेत्रों में कार्यरत है। सरकार उनको कार्य संपादन तथा गतिविधियों के विस्तार के लिए वित्तीय सहायता देती है। आज इन जनजातीय समुदायों के कल्याण को बढ़ावा देने में इन गैर–सरकारी संस्थाओं का महत्व स्वीकार कर लिया गया है तथा जनजातीय विकास कार्यक्रमों के निर्माण तथा क्रियान्वयन में इन संस्थाओं से जुड़े व्यक्तियों से अक्सर सलाह ली जाती है।

समाज के कमजोर तबकों की सेवा करने का लक्ष्य रखने वाली कुछ अन्य संस्थाओं की स्थापना कुछ व्यक्तियों द्वारा 60 और 70 के दशक में की गई। छोटी या बड़ी ऐसी संस्थाएँ अब भी संतोषप्रद ढंग से कार्य कर रही है। स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका और प्रकृति पर दो दृष्टिकोण मिलते हैं। कुछ ऐसी संस्थाओं के अस्तित्व से खुश हैं तथा इनकी बढ़ती भूमिका का पक्ष लेते हैं। उनके अनुसार ऐसी संस्थाओं को लोगों की सेवा करने का भरपूर अवसर देना चाहिए क्योंकि नौकरशाही उलझनों तथा सरकारी दृढ़ता के कारण सरकारी संस्थाएँ संतोषजनक रूप से कार्य नहीं कर पातीं। दूसरी ओर स्वयंसेवी संस्थाएँ, जो कुछ व्यक्तियों द्वारा आम जनता की सेवा करने की भावना के कारण बनी हैं, पूरी निष्ठा तथा लचीलेपन के साथ कार्य कर सकती हैं। दूसरे लोग मानते हैं कि स्ववंसेवी संस्थाओं को इतना महत्व और अधिकार दिया जाना अवांछनीय है क्योंकि इससे इन अवसरों के संस्थागत रूप लेने की संभावना है।

इस संदर्भ में यह सलाह दी जाती है कि स्वयंसेवी संस्थाओं को सरकारी संस्थाओं की साझेदारी तथा सहयोग से कार्य करने का भरपूर अवसर देना चाहिए तथा उनका कड़ा सरकारी निरीक्षण और संचालन होना चाहिए। धेबर आयोग के अनुसार किसी लोकतांत्रिक ढाँचे में यह आवश्यक है कि राष्ट्र के निर्माण की कुछ गतिविधियाँ गैर–सरकारी संरक्षण के अंतर्गत होनी चाहिए। कोठारी कहते हैं कि कमजोर तबकों के संघर्षशील समूहों में स्वयंसेवी संस्थाओं के कारण ही कुछ आशा की किरण दिखाई देती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इन स्वयंसेवी संस्थाओं को सिद्धांतः किसी विशेष मत से नहीं जुड़ना

चाहिए, न ही कार्य करना चाहिए बल्कि सामाजिक कार्यकर्ताओं को दल और राजनीति से ऊपर उठकर कार्य करना चाहिए।

स्वयंसेवी संस्थाओं के उद्देश्य :

स्वयंसेवी संस्थाएँ समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। चाहे इन संस्थाओं की प्रकृति कुछ भी क्यों न हो। वर्तमान समय में स्वयंसेवी संस्थाओं के उद्देश्य निम्न में से कुछ या सभी हो सकते हैं।

- सामाजिक–आर्थिक विकास में सहभागिता के लिए जागरूकता का निर्माण करना।
- एक योग्य तथा कुशल स्थानीय नेतृत्व का निर्माण करना।
- सामाजिक–आर्थिक आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के निर्माण के लिए सुनियोजित प्रयासों में सहयोग करना।
- रोजगार के अवसरों में विस्तार की प्रक्रिया को बढ़ावा देना।
- उचित व्यक्ति को लघु उद्योग स्थापित करने के लिए प्रेरित करना।
- जनजातियों को खेती की पुरानी तकनीक त्यागने तथा अधिकाधिक शिक्षित होने के लिए प्रेरित करना।[5]

भारतीय आदिम जाति सेवक संघ :

देश के विभिन्न भागों में आदिवासी कल्याण कार्यों में लगी गैर–सरकारी संस्थाओं का संघ, भारतीय आदिम जाति सेवा संघ कहलाता था। इसे 1948 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में आरंभ किया गया था। ये संस्थाएँ जनजातीय लोगों, उनकी समस्याओं तथा उनके बीच चलने वाले कार्यों के बारे में समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पैम्पलैट तथा पुस्तकें प्रकाशित करती थीं। आदिवासी कल्याण की प्रशासनिक समितियों तथा कान्फ्रेंसों में इनके कार्यकर्त्ता विशेषज्ञ के रूप में भाग लेते थे। वे जनजातीय समस्याओं पर होने वाले राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों में भी सरकार का प्रतिनिधित्व करते थे।

आदिम जाति सेवामंडल :

1940 में जनजाति बहुल गुमला में एक सेवा केन्द्र का शुभारंभ हुआ। इस केन्द्र को खोलने की प्रेरणा महात्मा गांधी द्वारा दी गई थी। शुरू में केन्द्र द्वारा रात्रि पाठशाला चलाई जाती थी तथा खादी का निर्माण किया जाता था। इस केन्द्र को चलाने वाले स्वतंत्रता सेनानियों को उपनिवेशवादी अंग्रेज सरकार ने 1945 तक कैद में रखा। इसके बाद फिर राजेन्द्र प्रसाद तथा नारायण जी ने गुमला से 13 मील दूर फोरी गाँव में एक आश्रम के रूप में एक नए केन्द्र की स्थापना की। खादी उत्पाद के अलावा यह आश्रम रोगियों को दवाएँ बाँटना, गाँव की सफाई तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाता था। कार्यक्रमों के विस्तार के साथ इस सेवा केन्द्र का नामकरण 1946 में आदिम जाति सेवामंडल कर दिया गया। मंडल ने छोटानागपुर के विभिन्न आदिवासी इलाकों में जनजाति कल्याण के कार्यक्रम का विस्तार किया।

मंडल ने कार्यक्रमों के दो वर्ग बनाए। पहला, जनजातीय शिक्षा की योजना लागू करना तथा दूसरा खादी उत्पादन, कुटीर उद्योग, आयुर्वेदिक दवाओं के वितरण को प्रोत्साहित करना और ग्राम पंचायत तथा सहकारी संस्थाओं का गठन करना। जनजातीय परिवारों के लड़के–लड़कियों को अतिरिक्त प्रेरणा की आवश्यकता थी। मंडल द्वारा उनके लिए आवासीय विद्यालय तथा छात्रावासों का निर्माण किया गया। गाँधी जी की आर्थिक विचारधारा के अंतर्गत मंडल को खादी केन्द्र, धान–ओसाई तथा कोल्हू केन्द्रों की स्थापना की तथा मधुमक्खी पालन, आयुर्वेदिक दवाओं के वितरण का ध्यान दिया। उसने मद्यनिषेध के लिए भी आंदोलन छेड़ा। मंडल ने न सिर्फ जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के उत्थान के लिए कार्य किया बल्कि उसने उनके सामान्य जीवन की गुणवत्ता को भी बेहतर बनाया।[6]

ईसाई मिशनरियाँ :

जनजातीय विकास के लिए कार्य करने वाली विभिन्न संस्थाओं में संभवतः विभिन्न मतों वाली ईसाई मिशनरियाँ सबसे पुरानी है। ये लगभग समस्त भारत के जनजातीय क्षेत्रों में सक्रिय है। मालाबार तट के पुराने ईसाई अपना धर्मांतरण पहली शताब्दी में अपोस्टल थॉमस द्वारा हुआ बताते हैं। दक्षिण भारत में इसका वास्तविक प्रसार 1541 में संत फ्रांसिस जेवियर के आगमन से हुआ। छोटानागपुर में 1843 में फादर गोस्सनर के नेतृत्व में लूथरेन मिशन ने अपनी गतिविधियाँ आरंभ की। उनकी रूचि प्रमुख रूप से ईसाई धर्म की शिक्षा देने में थी और छोटानागपुर में उनका प्रारंभिक इतिहास प्रमुखतः ईसाई धर्म का प्रचार रहा है।

छोटानागपुर का कैथलिक मिशन 1885–86 के करीब रेव. सी. लीवेंस द्वारा शुरू दिया गया। आदिवासी अपने पिछड़ेपन के कारण न्याय पाने की स्थिति में नहीं थे। सी.वी. पिंटो[7] टिप्पणी करते हैं कि जब डॉ. लीवेंस ईसा की दया और न्याय के प्रति सच्चे प्रेम से परिपूरित होकर उनकी समस्याओं को उठाने लगे तो जनजातियों को अपने जीवन में आशा की किरण दिखाई पड़ने लगी। यद्यपि लीवेंस का प्रारंभिक उद्देश्य धर्म–शिक्षा था पर वे शिक्षा, आर्थिक, स्वास्थ्य तथा समाज कल्याण से संबंधित कार्य भी करते हैं। मिशनरियों ने आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही कार्यों के लिए उनसे प्रभावी रूप से संपर्क करने के लिए उनकी भाषा और संस्कृति को समझने के महत्व को भी स्वीकार किया है। एल्विन ने बताया कि मिशनरियाँ जनजातियों को सभ्य बनाने, उनके रीति–रिवाजों को बदलने तथा उनकी पहचान को ईसाई धर्म में विलय करने को आतुर थी। यह सच भी है कि जंगलों तथा पहाड़ियों के दुर्गम इलाकों में मिशनरियों के पहुँचने के बाद जनजातियों का संपर्क मैदानी भाग के लोगों से हुआ और सरकार ने भी उन आदिवासियों पर कुछ ध्यान देना आरंभ किया। इस देश में आने के बाद मिशनरियों ने मुख्यतः निचले स्तर पर खड़े लोगों को बड़े स्तर पर धर्म शिक्षा देना आरंभ किया। आगे चलकर मिशनरियों की लोक–कल्याण की गतिविधियों से पहाड़ों तथा जंगलों में निवास करने वाले तथा एक समय भुला दिए गए लोगों का विकास हुआ तथा वे शिक्षित हुए मिशनरियों के स्वैच्छिक सेवाओं की तीव्रता का पता असम, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड तथा मध्य प्रदेश के जनजातीय इलाकों में चलता है। आदिवासियों के सामाजिक तथा आर्थिक स्तर को विकसित करने के लिए ईसाई मिशनरियाँ स्कूल, दवाखाना, अस्पताल, अनाथालय, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र तथा अन्य भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने जैसे लोक–कल्याणकारी कार्य कर रही हैं।

नागालैंड गाँधी आश्रम :

यह आश्रम नागालैंड के चुचुगिमलैंग में स्थित है और इसकी स्थापना 1955 में हुई थी। इसने सर्वप्रथम का एक छोटा चिकित्सा केन्द्र खोला था और 1977 में एक बहुउद्देशीय चिकित्सा राहत शिविर का गठन हुआ। अक्टूबर, 1979 में इसने एक स्वास्थ्य केन्द्र की शुरूआत की। इसके सचिव श्री नटवर ठक्कर तथा उनकी समर्पित कार्यकर्ताओं की टीम ने नागालैंड के ग्रामीण निवासियों, खासतौर पर चुचुगिमलौंग के वासियों के उत्थान के लिए सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है।

रामकृष्ण मिशन आश्रम :

श्री रामकृष्ण का संदेश–जीव की सेवा, शिव की सेवा ने स्वामी विवेकानन्द को एक संगठन बनाने के लिए प्रेरित किया। यह संगठन रामकृष्ण मिशन है, जो सहायता एवं पुनर्वास, चिकित्सा सेवा, शिक्षा, ग्रामीण तथा आदिवासी इलाकों में कार्य इत्यादि विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से ईश्वर की पूजा करने में संलग्न है। पुरी स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए छात्रावास चला रहा है। यह छात्रावास में रहने वाले को टाइप राइटिंग का प्रशिक्षण, अध्ययन के लिए विशेष कोचिंग, पशुपालन का व्यावहारिक प्रदर्शन इत्यादि की सुविधा प्रदान करता है। रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची 'दिव्यायन' चला रहा है। जिसकी शुरूआत 1969 में तीन उद्देश्यों के साथ हुई थी आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक। यह जमीनी स्तर पर कार्य करता है। अब यह विकसित होकर संपूर्ण

प्रशिक्षण संस्थान बन गया है जिसमें मुर्गीपालन, डेयरी, तिमंजिला छात्रावास, आधुनिक यंत्रों से सुसज्जित एक कार्यशाला तथा बढ़ईगिरी की एक अलग कार्यशाला इत्यादि है।

इसके अधिकतर लाभुक छोटानागपुर के पिछड़े समुदायों से आते हैं। चूँकि 'दिव्यायन' निचले स्तर के किसानों को दक्षता पर आधारित प्रशिक्षण देता है इसलिए भारतीय कृषि शोध परिषद् ने 1977 में इसे 'कृषि विज्ञान केन्द्र' के रूप में मान्यता दे दी है। रामकृष्ण मिशन आश्रम, चेरापूंजी को मेघालय के दुर्गम इलाकों में रहने वाले आदिवासियों के उत्थान के लिए चलने वाले तकनीकी, माध्यमिक, प्राथमिक तथा जे.बी. स्कूलों की देखभाल के लिए सरकारी सहयोग भी मिलता है। डेयरी तथा मुर्गीपालन योजना के तहत आश्रम आदिवासी युवकों को आधुनिक डेयरी तथा मुर्गी पालन का प्रशिक्षण देता है।[8]

इस प्रकार ये संस्थाएँ जनजातियों के शैक्षणिक विकास तथा आर्थिक प्रगति के लिए प्रयत्नशील हैं। भारतीय जनजातीय समुदाय का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक विकास इन कार्यों में जुटी विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य है। जहाँ अति उत्तरदायी तथा प्रतिक्रियाशील लोकतांत्रिक सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था अपनी प्रकृति के अनुसार अवैयक्तिक है, वहीं स्वयंसेवी संस्थाएँ जरूरतमंद लोगों से व्यक्तिगत रूप से मिलती हैं और अपने व्यक्तिगत प्रभाव से लोगों की गुप्त ऊर्जा का उपयोग उनके विकास के लिए फलदायी स्रोत के रूप में करती है।

संदर्भ :

1. कुलकर्णी, वी.एम., 1969, वोलेंट्री एक्शन इन डेवेलपिंग सोसाइटी, नई दिल्ली, पृ.सं. 40.
2. प्रसाद, एल.एम., 1987, वोलेंट्री एजेंसीज फॉर डेवलपमेंट ऑफ शिड्यूल कास्ट्स, इंडियन जरनल ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, जुलाई–सितम्बर, भाग–32, सं.–3, पृ.सं. 588–612.
3. संत, के., 1979, द स्टेट, वोलेंट्री बॉडीज एण्ड पीपुल्स इंस्टीट्यूशंस इन रूरल डेवलपमेंट, वोलेंट्री एक्शन अवार्ड, भाग–21, सं.–3, पृ.सं. 22–26.
4. हसनैन, नदीम, 1983, ट्राइबल इंडिया टुडे, हरनाम पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.सं. 206.
5. हेगड़े, ओ.डी., 1982, रोल ऑफ वी.एस.ओ. इन ट्राइलब डेवलपमेंट, कुरूक्षेत्र, भाग–30, सं.–13, अप्रैल, पृ.सं. 12–15.
6. विद्यार्थी, एल.पी., 1978, ए वॉलेंट्री ऑरगेनाइजेशन इन द सर्विस ऑफ द ट्राइबल वीक : ए केस स्टडी, एस. शर्मा (सं.) डायनामिक्स ऑफ डेवलपमेंट : ऐन इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव, भाग–2, पृ.सं. 651–660.
7. पिंटो, सी.बी., 1968, द चर्च एण्ड सोशल वेलफेयर इन ट्रूथ शैल प्रिवेल, कैथलिक एसोसिएशन ऑफ बॉम्बे, मुम्बई, एल.पी. विद्यार्थी द्वारा उद्धृत, पृ.सं. 125.
8. अनु. जाति तथा जनजाति के आयुक्त की 26वीं रिपोर्ट भाग–1, 1978–79, पृ.सं. 199–200.

Nav Jyoti, Vol. 6, No. 12, January-June 2018 ISSN : 2249-7331

महिला सशक्तिकरण में वैश्वीकरण की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (राँची नगर के सरकारी नौकरी में कार्यरत महिलाओं के विशेष संदर्भ में)

प्रियंका कुमारी

शोध छात्रा (आरजीएनएफ), स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची

भारतीय संविधान के माध्यम से महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक समाजिक एवं सांस्कृतिक समानता और स्वतंत्रता प्रदान करने की कोशिश की गई है। ''संविधान में वर्णित प्रमुख अनुच्छेद –14, 15(3,4), 16, 19, 23, 39(डी), 42, 47, 243(डी–टी) महिला कल्याण व सबलीकरण की दिशा में सभी वर्गो तथा क्षेत्रों की महिलाओं को विकास के आयाम छूने के लिए प्रेरित करते है।''[1] यद्यपि संविधान द्वारा महिलाओं के साथ समानता का वायदा किया गया है लेकिन फिर भी इनके साथ भेद–भाव होता रहा है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में समानता या फिर, शिक्षा व रोजगार में अवसरों की समानता की बात हो परिवार से लेकर समाज तक स्त्रियों के साथ भेद–भाव जारी है।

भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में सार्थक प्रयासों का वर्ष माना जाता है वर्ष 1974 क्योंकि इसी वर्ष भारतीय महिलाओं की स्थिति के अध्ययन के लिए एक समिति का गठन किया गया। विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के विकास हेतु रणनीति तय करने के लिए रोजगार, प्रौढ़ शिक्षा कृषि व ग्रामीण विकास पर चार कार्यदल तैयार किए गए। साथ ही, महिलाओं के विकास के लिए तीन आवश्यक क्षेत्रों जैसे– स्वास्थ्य, शिक्षा व रोजगार पर जोर दिया जाने लगा।

इसके अतिरिक्त विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से नारी की स्थिति सुधारने एवं उनके उत्थान का प्रयास किया गया है। महिला विकास हेतु प्रयासों का सिलसिला ''प्रथम पंचवर्षीय योजना के माध्यम से शुरू किया गया, जिसके माध्यम से ''महिलाओं के कल्याण'' को बल मिले। दूसरी से लेकर पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के प्रति 'कल्याणकारी' परियोजना को अपनाये रखा गया। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान महिला विकास के क्षेत्रों में कल्याण से विकास की ओर की अवधारणा विकसित हुई। सातवीं योजना में शिक्षा व प्रशिक्षण के माध्यम से महिला रोजगार पर बल दिया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1990–1995) के दौरान महिला समृद्धि योजना व इंदिरा महिला योजना लागू की गई। महिला सशक्तिकरण के दूरगामी लक्ष्य को नवीं पंचवर्षीय योजना के नौ प्रमुख उद्देश्यों में शामिल किया गया। महिलाओं को पुरूषों के 'भागीदार' के तौर पर उभारने की बात की गई। इसी उद्देश्यों के तहत वर्ष 2001 में महिला सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय नीति की घोषण की गई।''[2] इसके अतिरिक्त महिला से जुडे सभी क्षेत्रों में विद्यमान संसाधन, बुनियादी सेवाओं को एक दिशा में निर्देशित करने का प्रस्ताव रखा गया, जिसके तहत केन्द्र व राज्य सरकारों को आदेश दिया गया कि किसी भी कार्यक्रम या योजना का कम से कम 20 प्रतिशत् हिस्सा महिलाओं से संबंधित क्षेत्रों तक पहुंचे तथा इस प्रक्रिया का समुचित मॉनीटरिंग भी हो। वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष भी घोषित किया गया। वर्ष 2001–2002 दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) की तैयारी का वर्ष था, इसी वर्ष महिला सशक्तिकरण के विकास पर विशेष बल दिया गया।

महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम मुख्यतः शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों से संबंध रखता है। नारी की स्थिति एवं उसके सशक्तिकरण के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के संदर्भ में इनका अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तिकरण

वैश्वीकरण वह व्यवस्था है, जिसमें पूंजी राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर मुक्त रूप से विचरण करती हैं और अपने विस्तार के लिए सस्ते श्रम और सस्ते कच्चे माल की तलाश में रहती है, जिसमें अंतराष्ट्रीय वितीय संस्थाओं तथा अमीर देश के दबाव से राज्यों के नियम कानून समाप्त किये जाते हैं और एक मुक्त बाजार व्यवस्था को बढ़ावा दिया जाता है। जिससे अंतराष्ट्रीय व्यापार समाकलित किया जा सके। इसमें दुनिया भर का वितीय बाजार आपस में जुड़ा होता है। जिससे भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था की गत्यात्मकता का नियमन कर्ज संकलन की एक विश्वव्यापी प्रक्रिया द्वारा होता है। और जिसमें एक सुधरे हुए पूंजीवाद की नव उदारवादी व्यवस्था को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्राप्त होता है।

वैश्वीकरण एक मिश्रित, बहुआयामी तथा जटिल प्रक्रिया है, जो उदारीकरण और निजीकरण का प्रतिफल है। इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आयाम हैं यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो संपूर्ण विश्व को एक वैश्विक गांव का रूप प्रदान करती है। ''वैश्वीकरण की वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। यह पूंजी, श्रम, उत्पाद, प्रौद्योगिकी और सूचना के जरिए आधुनिकीकरण राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबंधन निर्माण के साथ ही उत्पन्न हो रही है। इसे सूचना तकनीकी एवं जैव प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों से गति मिलती है इसमें प्रतियोगिता, दक्षता, बेहतर उत्पादकता एवं प्रौद्योगिकी तरक्की के जरिए प्रगति की भी संभावना है। इसमें वैश्विक अंतर्संबद्धता का तीव्रीकरण, आंदोलनों तथा मिश्रण से परिपूर्ण विश्व की दलील, संबंध और संपर्क, चिरस्थाई सांस्कृतिक अंतक्रियाएं और विनिमय पर बल दिया जाता है।''[3]

वैश्वीकरण के बारे में विविध विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। इन्हें मुख्य रूप से तीन कोटियों में विभक्त करके देखा जा सकता है। जो निम्नांकित हैं–

कुछ विद्वानों का मानना है कि वैश्वीकरण कोई नई प्रक्रिया नहीं है। उपनिवेशवाद के आरंभ होने के साथ ही साथ वैश्वीकरण की प्रक्रिया भी आरंभ हो गयी। दुनिया में सत्रहवीं शताब्दी में साम्राज्यवाद की एक नीति के रूप में उपनिवेशवाद आरंभ हो गया था। इंग्लैंड, फ्रांस, पुर्तगीज जैसे अनेक देशों ने यूरोप तथा एशिया सहित दुनिया के तमाम देशों को अपनी कॉलोनी बना लिया था। उपनिवेशवाद के अधीन देशों से कच्चा माल उपनिवेशवादी देशों में जाया करता था, इससे औद्योगिक उत्पादन होता था। उत्पादित माल पुनः खपत हेतु उन्हीं कॉलोनियों में आया करते थे। इस प्रक्रिया में विश्व के बाजारों के एकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। दुनिया के विभिन्न देश निकट आये। विश्व अर्थव्यवस्था का एकीकरण आरंभ हुआ। यद्यपि इसमें एकीकरण की प्रकृति कुछ भिन्न थी। इस प्रकार से उपनिवेशवाद के आरंभ के साथ–साथ वैश्वीकरण का भी आरंभ हो गया।

विद्वानों की एक दूसरी कोटि है जो उक्त विचारों से सहमत नहीं है। ऐसे विद्वान मानते हैं कि आधुनिक युग के विकास का मुख्य परिणाम दुनिया का एकीकरण था। अतः वैश्वीकरण की जड़ें आधुनिकता में विद्यमान रही हैं। ये आधुनिकीकरण के अगले चरण के रूप में वैश्वीकरण को देखते हैं। इस कोटि के विद्वान आधुनिकता में आई तेजी को वैश्वीकरण के रूप में देखते हैं। वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के बीच गहरा रिश्ता है जो संपूर्ण विश्व पर आधुनिकता के प्रभावों के विस्तार के माध्यम से दुनिया को संकुचित कर रहा है अथवा नजदीक ला रहा है। ये विद्वान मानते हैं कि प्रौद्योगिकीय आविष्कारों के परिणामस्वरूप सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं जिसकी वजह से वैश्वीकरण को गति तथा उर्जा प्राप्त हो रही हैं इस प्रकार इस कोटि के विद्वान आधुनिकता में आई तेजी को वैश्वीकरण के रूप में देखते हैं।

विद्वानों की एक तीसरी कोटि है जो उक्त दोनों विचारों से सहमत नहीं है। इस कोटि के विद्वान वैश्वीकरण को एक नयी अवधारणा के रूप में स्वीकार करते हैं। यह मानते हैं कि यद्यपि वैश्वीकरण पूर्णतया एक नई प्रक्रिया नहीं है, तथापि इसे उपनिवेशवाद और आधुनिकीकरण के सदृश्य भी नहीं माना जा सकता है। इस कोटि के विद्वान मानते हैं कि 1980 के दशक से द्विआयामी विश्व का परिदृश्य बदलने लगा। संयुक्त सोवियत संघ के विघटन के बाद से एक ऐसे अनियंत्रित पूंजीवाद का

विकास हुआ जिसे कोई चुनौति देने वाला नहीं रहा। परिणामस्वरूप एक आयामी विश्व प्रभावी हो गया। पुंजीवाद ने विश्व के मानचित्र पर अभूतपूर्व सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रस्तुत किया। इस नवीन परिवर्तित व्यवस्था के साथ अपने को पुनर्समायोजित करने का दुनिया ने प्रयास किया। 1980 के दशक में अमेरिका ने उदारीकरण तथा मुक्त बाजार व्यवस्था की नीति लागू की। नयी आर्थिक नीति तथा उदारीकरण कार्यक्रमों का परिचय देने वाला चतुर्थ संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम किया गया। इस दौरान सूचना प्रौद्योगिकी विशेष रूप से बढ़ा । बेहतर संभावना की तलाश में लोग उत्प्रवासित होने लगे। इसके परिणामस्वरूप एक नवीन आर्थिक और राजनीतिक बुनियादी पुनर्संरचना के निर्माण की वैश्विक परिस्थिति उत्पन्न हुई। औद्योगिक क्रांति के समय से ही एक प्रकार के वैश्विक एकीकरण का विकास चला आ रहा है। यह विकास राष्ट्र राज्य की सीमाओं को लांघकर हुआ है। इस प्रकार से वैश्वीकरण एक बहुआयामी एवं जटिल नवीन प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत बाजारों, वित और प्रौद्योगिकियों का एकीकरण हो रहा है, विश्व का ऐसा संकुचन हो रहा है जिसके प्रत्येक कोने में हम इतनी जल्दी और सस्ते में पहुंच जाएं जो पहले कभी संभव नहीं था। पूर्व की सभी अंतराष्ट्रीय व्यवस्थाओं की भांति यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में घरेलू राजनीति, आर्थिक नीतियों तथा सभी देशों के विदेशी संबंधों को स्वरूप प्रदान कर रहा है। वैश्वीकरण के आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक आदि विविध आयाम हैं। ये सभी आपस में अंतर्संबंधित तथा परस्पर निर्भर हैं। इनमें से किसी एक आयाम का स्वतंत्र मूल्यांकन मात्र आंशिक अथवा एकाकी पक्ष को उद्घाटित करता है। इसका सम्यक मूल्यांकन समग्रता तथा सभी आयामों का समावेश करने की वकालत करता है। तथापि आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वैश्वीकरण के अर्थ को स्पष्ट करना समाजविज्ञान की मांग है।

आर रॉबर्टसन[4] के अनुसार वैश्वीकरण प्रक्रिया की जटिलता को देखते हुए वे मानते हैं कि वैश्वीकरण लादने का दबाव तेजी से बढ़ा है किंतु इसने अंतरात्मक शक्ति प्रदान किया।

प्रो आनंद कुमार[5] के अनुसार वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो चारों ओर आकार ग्रहण कर रही है। इसके आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक, सांस्कृतिक तत्व है। जो विश्व के विभिन्न भागों में असमान रूप से विकसित हुए हैं।

रवि प्रकाश पाण्डेय[6] के अनुसार वैश्वीकरण अंतर्वेषन और बहिष्करण की एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें विश्व बाजार, विभिन्न आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं, मल्टीमिडिया, प्रोद्योगिकी तथा संस्कृति आदि के एकीकरण का अंतर्वेशन हो रहा है, जबकि राष्ट्र राज्य की प्रभुसत्ता और स्वेदशीयता आदि का बहिष्करण हो रहा है।

अब प्रौद्योगिकी ही इस प्रकार विकसित हुई है, जो किसी एक देश की सीमाओं में नहीं रह सकती, उसका विस्तार ही उसकी व्यापारिक सफलता की कुंजी है। यह किसी भी प्रकार के नियम–कायदे, आर्थिक मान्यताओं यहां तक की सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताओं को भी आधुनिक प्रौद्योगिकी के मार्ग में बनने वाली बाधाओं को स्वीकार नहीं करता । कभी–कभी तो सामाजिक रचना को भी बदलने की आवश्यकता रही है, इसलिए यह नहीं मानना चाहिए की ''जब हम नई प्रौद्योगिकी के पंखों पर वैश्वीकरण का वरण करते हैं, तो नई प्रौद्योगिकी और नये उपकरणों को ही अपनाते हैं, बल्कि एक नई और पूरी संस्कृति को भी स्वीकार करते हैं।''[7]

कामकाजी महिलाएं– कामकाजी महिला शब्द का प्रयोग प्रायः नौकरी करने वाली महिला के संदर्भ में किया जाता है। अर्थात् वे महिलाएं जो घरों के बाहर नियमित रूप से आर्थिक व व्यावसायिक गतिविधियों में व्यस्त रहती हैं। कार्यरत महिलाएं शब्द का प्रयोग उन स्त्रियों के लिए हुआ है जो वेतन वाले काम धंधों में लगी है। काम करने का अर्थ स्वयं काम करना ही नहीं बल्कि दूसरे व्यक्तियों से काम लेना तथा उनके कार्य की निगरानी व निर्देशन भी है। अर्थात कामकाजी महिलाओं का तात्पर्य वैसी महिलायें हैं जो शारीरिक या मानसिक रूप से कोई भी कार्य आर्थिक लाभ के लिए करती हैं। कामकाजी महिलाओं को विकास का प्रतीक माना जाता है। जीविकोपार्जन में लगी महिलाओं को कामकाजी कहा जाता है।

कामकाजी महिला शब्द का प्रयोग प्रायः नौकरी करने वाली महिला के सन्दर्भ में किया जाता है। उच्च वर्ग की महिलाओं की स्थिति भले ही कुछ अलग हो, लेकिन मध्यम वर्ग की अधिकांश कामकाजी महिलाओं को आज भी कार्यालय के बाद घर के कामकाज में जुट जाना पड़ता है। बात चाहे महानगरों की करें या छोटे कस्बों की कामकाजी महिलाएँ आज भी घर में सबसे पहले उठती हैं और रात में सबसे बाद में उन्हें बिस्तर नसीब हो पाता है।

अध्ययन के उददेश्य

1. कामकाजी महिलाओं के सशक्तिकरण पर वैश्वीकरण के प्रभावों को जानना।
2. कामकाजी महिलाओं के सशक्तिकरण में आर्थिक परिस्थितियों में हुए परिवर्तन का अध्ययन करना।

अध्ययन विधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन के लिए तथ्यों को वैज्ञानिक तरीके से एकत्रित किया गया और इसके विश्लेषण के लिए उपलब्ध वैज्ञानिक प्रविधियों की सहायता ली गई। पद्धति के रूप में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया गया। वस्तुतः ''वैज्ञानिक पद्धति वह व्यवस्थित प्रणाली है जिसके अंतर्गत तथ्यों का संकलन करके उनका निरीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है।''[8] अतः मेरा यह शोध आनुभविक तथा वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है।

प्राथमिक तथ्यों की प्राप्ति के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया, जिसमें प्रश्नों की सूची थी इन्हीं प्रश्नों के उतरों के आलोक में आँकड़ों का संकलन किया गया। अपने अध्ययन के अंतर्गत मैंने साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया। वास्तव में ''यह एक ऐसी विधि है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति उसी विशेष उद्देश्य को परस्पर आमने सामने होकर संवाद, वार्तालाप करते हैं।''[9]

निदर्श का चुनाव

प्रस्तुत अध्ययन के लिए 50 कार्यरत महिलाओं का चयन निदर्शन पद्धति के द्वारा किया गया है। वास्तव में निदर्शन एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता समस्त इकाइयों में से प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चयन कर उनका अध्ययन करता है। अर्थात समग्र में से चुनी गई कुछ अशों या इकाइयों को ही निदर्श कहा जाता है। निदर्शन पद्धति के अंतर्गत उददेश्यपूर्ण निदर्शन का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध के लिए अध्ययन क्षेत्र के रूप में राँची नगर के वार्ड सं0 47 का चयन किया गया है। ''राँची जिला का क्षेत्रफल 4962.82 वर्ग किमी है। जिसकी कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 2912022 है। यहां की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर 23.90 प्रतिशत है। झारखण्ड की कुल जनसंख्या का 8.83 प्रतिशत भाग रांची में निवास करता है। जनसंख्या की दृष्टि से यह झारखण्ड का पहला जिला है। रांची जिले में 0–6 वर्ष की आयु के बच्चों की कुल संख्या 388052 है, जिसमें लड़कों की संख्या 200327 और लड़कियों की संख्या 187725 है। यहां का लिंगानुपात 950 है। रांची की साक्षरता दर 77.13 प्रतिशत है। जिसमें पुरूष साक्षरता 85.63 प्रतिशत और महिला साक्षरता 68.20 प्रतिशत है। और इसका जनसंख्या घनत्व 557 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।''[10]

वार्ड संख्या – 47

''वार्ड संख्या 47 के अंतर्गत हिनु पुल, कडरू पुल, मेन रोड, राजकीय मध्य विद्यालय ए.जी. कोलोनी, केन्द्रीय विद्यालय हीनू, राजकीय मध्य विद्यालय परस टोली, एस.एस.+2 बालिका विद्यालय डोरण्डा, कडरू रेल लाइन, डोरण्डा अस्पताल, ए.जी.ऑफिस, पोस्ट ऑफिस, एस.बी.आई, मेकन हॉस्टिपल, यूनियन बैंक, अरगोड़ा, निर्मल लेन, डी.पी.एस., आई लेक्स सिनेमा हॉल, श्री कृष्ण पार्क, लॉरेट कॉन्वेंट स्कूल, साउथ ऑफिस पाड़ा, नॉर्थ ऑफिस पाड़ा, मेजिस्ट्रेट कॉलोनी, उराँव कोचा, संत जेवियर स्कूल,

संत मेरी स्कूल, जवाहर विद्या मंदिर स्कूल, डोरण्डा कॉलेज, आयुष भवन, डोरण्डा मेन रोड, सिंचाई भवन, डिबडीह का भाग इत्यादि आते हैं।''[11]

अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर सारणी के माध्यम से तथ्यों का वर्गीकरण व विश्लेषण किया गया है।

सारणी संख्या 1

नौकरी में आने के बाद स्वयं की पहचान के आधार पर उत्तरदात्रियों का वर्गीकरण

उत्तरदात्रियों का मत	संख्या	प्रतिशत
सामाजिक दायरे में बढोतरी	24	48
आर्थिक सबलता	18	36
मनोवैज्ञानिक मजबूती	7	14
कुछ खास नहीं	1	2
योग	**50**	**100**

विश्लेषण : सारणी से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उतरदात्रियाँ नौकरी में आने के बाद अपनी पहचान स्थापित कर पाई हैं और समाज में उनकी अपनी प्रस्थिति स्थापित हो पाई है। 48 प्रतिशत उतरदात्रियों ने सामाजिक दायरे में बढोतरी, 36 प्रतिशत ने आर्थिक सबलता, 14 प्रतिशत ने मनोवैज्ञानिक मजबूती व 2 प्रतिशत ने कुछ खास परिवर्तन नहीं होने की बात स्वीकार की है। इससे महिलाओं की प्रस्थिति में आये सकारात्मक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जो उनके सशक्तिकरण के मार्ग के साधक हो रहे हैं।

सारणी संख्या 2

एक नौकरीशुदा महिला होने के कारण सशक्त होने की परिस्थितियों के आधार पर उत्तरदात्रियों का वर्गीकरण

उत्तरदात्रियों का मत	संख्या	प्रतिशत
निर्णय लेने में	12	24
पारिवारिक जरूरतों में	21	42
स्वाभीमान में बढोतरी	14	28
किसी प्रकार नहीं	3	6
योग	**50**	**100**

विश्लेषण : सारणी से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उतरदात्रियाँ नौकरी में आने के बाद अपने आपको सशक्त पाती है। 24 प्रतिशत उतरदात्रियों ने निर्णय लेने में, 42 प्रतिशत ने पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने में, 28 प्रतिशत ने स्वाभीमान में बढोतरी व 6 प्रतिशत ने किसी भी प्रकार के परिवर्तन नहीं होने की बात स्वीकार की है। यह बताता है कि महिलाओं में अपने आपको सशक्त रूप से स्थापित होने की सकारात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं।

सारणी संख्या 3

नौकरी करने वाली महिला होने के कारण स्वयं को भविष्य के प्रति सुरक्षित महसूस करने के आधार पर उत्तरदात्रियों का वर्गीकरण

उत्तरदात्रियों का मत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	30	60
नहीं	12	24
कुछ हद तक	8	16
योग	**50**	**100**

विश्लेषण : सारणी से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उतरदात्रियों को नौकरी में आने के बाद अपना भविष्य सुरक्षित दिखाई पड़ता है। 60 प्रतिशत उतरदात्रियों ने हां कहा वहीं 24 प्रतिशत ने नहीं में जवाब दिया। जबकि 16 प्रतिशत ने कुछ हद तक की बात स्वीकार की है। यह नौकरी करने के कारण महिलाओं में उत्पन्न हुए आत्मविश्वास का सूचक है। जिससे महिलाओं में सुरक्षित भविष्य के प्रति आशा जगी है।

सारणी संख्या 4

नौकरी में आने के बाद सामाजिक विषमता का सामना कर पाने के आधार पर उत्तरदात्रियों का वर्गीकरण

उत्तरदात्रियों का मत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	26	52
नहीं	16	32
कुछ हद तक	8	16
योग	**50**	**100**

विश्लेषण : सारणी से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उतरदात्रियाँ नौकरी में आने के बाद सामाजिक विषमता का सामना कर पाने में सफल हो पाई हैं। यहां पर 52 प्रतिशत उतरदात्रियों ने इसे स्वीकार किया है। वहीं 32 प्रतिशत ने इसे अस्वीकार किया है। जबकि 16 प्रतिशत इसे कुछ हद तक स्वीकार करती हैं। यह बताता है कि महिलाओं में अपनी विषम परिस्थितियों से लड़ने में काफी मजबूती आई हैं और वे सशक्तिकरण की ओर बढ रही हैं।

सारणी संख्या 5

नौकरी में आने के बाद महिलाओं में आई जागरूकता के आधार पर उत्तरदात्रियों का वर्गीकरण

उत्तरदात्रियों का मत	संख्या	प्रतिशत
अधिकारों के प्रति	25	50
सुरक्षा का भाव	13	26
कानून का ज्ञान	9	18
कुछ नहीं	3	6
योग	**50**	**100**

विश्लेषण : सारणी से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उतरदात्रियों में नौकरी में आने के बाद जागरूकता बढ़ी है। 50 प्रतिशत उतरदात्रियों ने अधिकारों के प्रति जागरूकता में बढोतरी, 26 प्रतिशत ने सुरक्षा के भाव में बढोतरी, 18 प्रतिशत ने कानून के ज्ञान में बढोतरी व 6 प्रतिशत ने कुछ खास परिवर्तन नहीं होने की बात स्वीकार की है। यह महिलाओं को सुरक्षा के प्रति जागरूकता की भावना को दर्शाता हैं।

निष्कर्ष

समाज की महिलायें आज भी गरीबी, निरक्षरता, आर्थिक असमानता, निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में उपेक्षा का शिकार है। यही नहीं, यह महिलायें संसाधनों के सीमित उपयोग तथा पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर अवहेलना तथा हिंसा का सामना कर रही हैं गरीब परिवार की महिलाओं को अपनी जिम्मेदारियों के अनुरूप उचित साधन और अवसर नहीं मिल पा रहे हैं, परंतु घर चलाने की जिम्मेदारी उन्हीं पर सौंपी गयी है। घर की यह जिम्मेदारी पूरी करने की क्षमता सीमित साधनों, जागरूकता तथा अवसर के अभाव में और भी कम हो जाती है। यह स्थिति निरन्तर बढ़ते रहने से महिलायें अपमानित महसूस करने लगती हैं अतः उन्हें सशक्त करने तथा उनकी सोच में परिवर्तन लाने के लिये आवश्यक होगा कि आर्थिक मामलों की लगाम उनके हाथ में दी जाये तथा आर्थिक उत्पादकता में उनकी हिस्सेदारी बढ़ायी जाये।

महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास करना, केवल महिलाओं के लिए ही नहीं बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए भी उपयोगी व महत्वपूर्ण प्रमाणित होगा। सशक्तिकरण की प्रक्रिया की सहायता से महिला स्वयं को इस प्रकार से संगठित कर सकती हैं। जिससे कि वे आत्मनिर्भरता में वृद्धि कर सकें। तथा विकल्पों के चयन व संसाधनों पर नियंत्रण के संबंध में अपने स्वतंत्र अधिकार पर बल दे सकें।

संदर्भ सूची

1. कश्यप सुभाष, (2010), *भारत का संविधान*, एनबीटी, नई दिल्ली पृ. 23
2. मिश्रा, एस के एवं पुरी, वी के (2017), *भारतीय अर्थव्यवस्था*, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली पृ. 34
3. झा अविनाश (2005), *बैकग्राउंड टू ग्लोबलाइजेशन*, आइ एम आर प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 213
4. रॉर्बटसन आर (1998), *ग्लोबलाइजेशन सोशल थ्यूरी एण्ड ग्लोबल कल्चर* : सेज पब्लिकेशन लंदन, पृ. 8
5. आनंद कुमार उद्धृत श्रीवास्तव, राजीव कुमार (2012) : *वैश्वीकरण एवं समाज*, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 64
6. पाण्डे, रवि प्रकाश (2004),*कॉन्सीकवेन्स सिनॉपसीस ऑफ इन्टरनेशनल सेमिनार ऑन ग्लोबलाइजेशन एण्ड पॉवर्टी*, हेल्ड ऑन 4–6 दिसम्बर, ऑर्गनाईस बाई एम.जी. काशी विद्यापीठ वाराणसी, 2001, पृ.1
7. त्रिपाठी जे डी, (1990), हाउ पिपुल लर्न : माइंड, एक्सपिरियेंस एण्ड स्कूल, नेशनल युनिवर्सिटी प्रेस, वाशिंगटन डिसी, पृ. 45–46
8. गुडडे एण्ड हट, (1987), मेथड्स इन सोशल रिसर्च, मैकग्रा हील्स इंटरनेशनल एडिसन, सिंगापूर, पृ. 17
9. वारलसन डी,(1973),रिसर्च इन सोशल साइंस, ए वन ग्रे प्रकाशन, नीदरलैंड, पृ. 12
10. भारत की जनगणना 2011
11. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.रॉचीएनआईसी.इन